01 शैक्षणिक नेतृत्व का निर्माण और दायरा

सुनील बत्रा



''छात्रों के सीखने पर कक्षा में होने वाले शिक्षण के बाद सबसे अधिक प्रभाव स्कूल नेतृत्व का ही होता है।''

समूचे भारत के केवल कुछ सौ स्कूलों में ऐसे शिक्षक हैं जो बच्चों के सामने प्रासंगिक चुनौतियाँ रखते हैं, उन्हें प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करते हैं और उनके आने वाले वर्षों को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर उनके साथ संवाद करते हैं। इसी प्रकार कुछ अनुभवी अध्यापक हैं जो कक्षाओं में बहु–स्तरीय शिक्षण के लिए योजना बनाने में और स्कूल के संसाधनों का समुचित उपयोग करने में नए शिक्षकों का मार्गदर्शन करते हैं।

कई स्कूलों में ऐसे शिक्षक भी हैं जो हर सप्ताह छोटे–छोटे समूहों में विभागाध्यक्षों और स्कूल–प्रमुखों के साथ बैठकर बच्चों की प्रगति और पाठ्यक्रम से जुड़े मुद्दों पर स्पष्ट दृष्टिकोण विकसित करते हैं।

ऊपर वर्णित बातें पारिस्थितिक सन्दर्भ से कटे हुए शून्य में नहीं घटतीं। सभी शिक्षक अपने परिवेश के सन्दर्भों (उपलब्ध कराए गए संसाधन और लोग, मिल रहे सहयोग की प्रकृति, संस्था की दूरदर्शी परिकल्पना या उसका अभाव, उपलब्ध प्रशिक्षण की विषयवस्तु, मिलने वाला मानदेय, पढ़ने,चिन्तन करने तथा वैचारिक आदान–प्रदान करने के अवसर) में कार्य करते हैं।

विचारवान व संवेदनशील शिक्षकों के हर समूह के पीछे कुछ ऐसे लोग होते हैं जो शिक्षकों की कक्षा को प्रभावित करने की क्षमता में विश्वास करते हैं। साथ ही जो शैक्षणिक प्रक्रियाओं तथा शिक्षा के नैतिक उद्देश्य सहित बच्चों के साथ सम्बन्ध जोड़ने में शिक्षकों को समर्थ बनाने के तरीके खोजते हैं।

> *निजी स्कूलों में, स्कूल–प्रमुख के पद पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति की योग्यता का मापदण्ड उसकी 'जनसम्पर्क' कुशलता को माना जाता है। जिसे स्कूल को एक लोकप्रिय उत्पाद की तरह आर्थिक और सामाजिक रूप से स्थापित करने की आवश्यकता के आधार पर नापा जाता है। शैक्षणिक रुचियाँ, विनम्रतापूर्ण नेतृत्व तथा एक विविधतापूर्ण पाठ्यक्रम को लागू करने की क्षमता जैसे मानदण्डों की न तो अपेक्षा की जाती है और न ही उन्हें मूल्यवान माना जाता है।*

वे शिक्षकों को सिर्फ प्रोत्साहित ही नहीं करते बल्कि उनके विचारों को भी पोषित करते हैं, मुद्दों की पहचान करते हैं, तनावों को सुलझाते हैं तथा उपयुक्त ढाँचों, पद्धतियों, विश्वासों, तैयारियों और क्षमताओं के निर्माण को सम्भव बनाते हैं। वे अपने सहज अन्तर्बोध और अनुभव के आधार पर 'शैक्षणिक नेतृत्व' प्रदान करते हैं। शैक्षणिक नेतृत्व का तात्पर्य चिन्तन–मनन, सैद्धान्तिक ढाँचों, अन्वेषण, संवाद, नियोजन तथा सहयोगी विद्वानों के बीच वैचारिक आदान–प्रदान के द्वारा ऐसे अनुभवों को विकसित करने और निखारने से है जिनका सम्बन्ध शैक्षणिक संस्थाओं, लोगों, तंत्रों, सहायक–संस्थाओं का नेतृत्व करने और संस्थाओं की आन्तरिक एवं उनके बीच की अन्तर्व्यवस्थाओं के प्रबन्धन से होता है।

दुर्भाग्य से, भारत के अधिकांश शासकीय और निजी, ग्रामीण और शहरी स्कूलों के शिक्षकों पर स्कूल के भीतर और बाहर पड़ने वाले प्रभावों को शायद ही कोई पेशेवर ज्ञान से परिपूर्ण तथा पोषण और सहयोग देने वाला कह सकता है। भारत के साढ़े दस लाख से भी अधिक स्कूलों में से 60 प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों में सिर्फ दो या तीन शिक्षक हैं, और इसलिए उनमें न तो स्कूल–प्रमुख का आधिकारिक पद होता है और न ही उनमें श्रेष्ठ शिक्षा के लिए नेतृत्व विकसित करने का कोई रुझान होता है। सरकार केवल ऐसे स्कूलों में स्कूल प्रमुख का पद प्रदान करती है जिनमें पाँच या अधिक शिक्षक हों। जहाँ स्कूल–प्रमुख के पद का प्रावधान होता भी है तो वहाँ नेतृत्व या प्रबन्धन के किसी प्रशिक्षण के बिना ही उसे नियुक्ति की तिथि के आधार पर सबसे वरिष्ठ शिक्षक द्वारा भर दिया जाता है। अकसर तो नौकरशाही या राजनीतिक अड़ंगों के चलते स्कूल–प्रमुख का पद भरा ही नहीं जाता।

निजी स्कूलों में, स्कूल–प्रमुख के पद पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति की योग्यता का मापदण्ड उसकी 'जनसम्पर्क' कुशलता को माना जाता है। जिसे स्कूल को एक लोकप्रिय उत्पाद की तरह आर्थिक और सामाजिक रूप से स्थापित करने की आवश्यकता के आधार पर नापा जाता है। शैक्षणिक रुचियाँ, विनम्रतापूर्ण नेतृत्व तथा एक विविधतापूर्ण पाठ्यक्रम को लागू करने की क्षमता जैसे मानदण्डों की न तो अपेक्षा की जाती है और न ही उन्हें मूल्यवान माना जाता है। परिणामस्वरूप अधिकांश स्कूलों में शैक्षणिक नेतृत्व, शिक्षकों के विकास में सहयोग, पाठ्यक्रम को अमल में लाने और संगठनात्मक प्रबन्धन के बारे में बुनियादी धारणाएँ भी नदारद रहती हैं।

ब्लॉक या जिले के स्तर पर शैक्षणिक नेतृत्व की प्रकृति पारम्परिक रूप से प्रशासनिक मानी जाती है। जिसमें शिक्षकीय मार्गदर्शन के विशिष्ट पेशेगत पहलुओं, नए शिक्षकों के प्रशिक्षण, प्रबन्धन, शिक्षकों और स्कूल–प्रमुखों के ज्ञान के विकास के बजाय आँकड़ों को दर्ज करने, समय–सारणियों के पालन, रिपोर्ट लिखने और परीक्षाओं को अधिक महत्व दिया जाता है। स्कूल की ऊपरी कक्षाओं में असफलताओं का कारण निचली कक्षाओं में 'खराब शिक्षण' को बताया जाता है। बच्चों की विकासात्मक आवश्यकताओं और स्कूली पाठ्यक्रम की रचना तथा उसके प्रबन्धन के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किए जाते। आमतौर पर स्कूल शिक्षकों, प्रमुखों और सहायक–संगठनों (सीआरसी, बीईओ, डीआईईटी आदि संस्थाओं) को संस्था की आन्तरिक भूमिका और विभिन्न संस्थाओं के अन्तर्सम्बन्धों की भूमिका का अहसास नहीं होता। वे समग्र रूप से योजना बनाने, तैयारी करने और सहयोगी गतिविधियों में परिवर्तन करने में शायद ही कभी समर्थ हो पाते हैं। स्कूल–प्रमुख से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने पद पर रहते हुए ही नेतृत्व करना सीखे। लेकिन इसमें उसे लगभग कोई व्यवस्थित संस्थानिक सहयोग नहीं मिलता। इसलिए स्कूली वर्षों के पूरे दौर में पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं, शिक्षकों की तैयारी और शिक्षक–दल के विकास में बड़ी खामियाँ पाई जाती हैं।

स्कूल प्रमुख के पद के अस्पष्ट रूप से परिभाषित होने के साथ–साथ नेतृत्व के प्रशिक्षण के अभाव का निहितार्थ यह है कि स्कूलों में, संकीर्ण रूप से परिभाषित बोर्ड परीक्षा परिणामों के अलावा, जवाबदेही वाली व्यवस्थाएँ और कार्यप्रणालियाँ विकसित करने के कोई ढाँचागत और भरोसेमन्द तरीके नहीं हैं। शैक्षणिक नेतृत्व की पेशेवर कार्यप्रणालियों के बारे में सीखने के अवसरों के न होने का परिणाम यह हुआ है कि स्कूल प्रमुखों, शिक्षा–प्रशासकों, प्रबन्धकों और नीति–निर्माताओं के बीच के सम्बन्ध ठीक से परिभाषित नहीं हैं। एनयूईपीए और कुछ थोड़े से एसआईईएमएटीएस जैसे संगठनों के काम – जो ज्यादातर प्रशासनिक हैं – के सिवाय शैक्षणिक नेतृत्व के लिए संस्थाओं के स्तर पर बहुत ही सीमित और क्षीण प्रयास ही हुए हैं।

अध्ययनों से प्रकट होता है कि स्कूल प्रमुख किस तरह स्कूल में सीखने के वातावरण और विद्यार्थियों के शैक्षणिक परिणामों को प्रभावित करने में अन्य लोगों का नेतृत्व करते हैं। स्कूल के परिणामों को बेहतर बनाने में नेतृत्व प्रदान करने वालों का प्रभाव ज्यादातर परोक्ष रूप से होता है। स्कूल के वातावरण और युवा विद्यार्थियों के जीवन को बदलने में इसे दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। अध्ययनों से यह भी स्थापित हुआ है कि 'नेता दूसरों के माध्यम से परिणाम हासिल करते हैं' और यही नेतृत्व का सारसूत्र है। (अर्ली एवं वींडलिंग 2004, लीथवुड 2004)।

शैक्षणिक नेतृत्व की सुपरिभाषित धारणाओं के न होने से नेतृत्व के अध्ययन और स्कूलों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता तथा उसके प्रभाव पर भारत में लगभग कोई ध्यान नहीं दिया गया है। इसलिए शिक्षकों, पालकों, विद्यार्थियों, स्कूल–प्रमुख, समुदाय और शासकीय कर्मचारियों के बीच विकसित होने वाले सम्बन्धों के सन्दर्भ में संस्थागत विकास के बारे में ज्ञान निर्मित करने के लिए व्यवस्थित अवसर सुलभ करवाए जाने की जरूरत है। नेतृत्व के लिए करिश्माई नायकों या गतिशील स्वप्नदर्शियों पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। एक समाज के रूप में हमें शिक्षा में सक्रिय पहल करने वाले नेताओं का समुदाय विकसित करने में सहायक होना सीखना होगा।

पूछताछ, शोध, उच्चशिक्षा और सतत पेशेवर विकास कार्यक्रमों में प्रशिक्षण और पढ़ाई की पद्धति के तौर पर शैक्षणिक नेतृत्व को भारत में लगभग जाना ही नहीं जाता। यूरोप, यू.के., यू.एस.ए, ऑस्ट्रेलिया, चीन और सिंगापुर के कुछ भागों में प्रशासनिक और शैक्षणिक नेतृत्व के बारे में काफी कुछ लिखा गया है। पिछले कुछ दशकों में, प्रबन्धन और कॉर्पोरेट प्रशिक्षण के तरीकों ने प्रशासनिक और शैक्षणिक नेतृत्व के पाश्चात्य विमर्श को अत्यधिक रूप से प्रभावित किया है। कॉर्पोरेट क्षेत्र और निजीकरण के बढ़ते हुए प्रभाव के चलते कार्यक्षमता, नापे जा सकने वाले परिणामों, लक्ष्य–प्राप्ति और प्रबन्धन की धारणाओं ने विद्यार्थियों, शिक्षकों और संस्थाओं के उपलब्धि–स्तरों को आँकने के पारम्परिक तरीकों को बदल दिया है। सिर्फ परिणामों और कार्यक्षमता पर केन्द्रित दृष्टिकोण की व्यापक आलोचना के कारण पाश्चात्य जगत में सोचा–समझा बदलाव भी आया है जिसने शिक्षा के शैक्षणिक और मानवीय पहलुओं को केन्द्रीय महत्व दिया है। इसके फलस्वरूप, नेतृत्व में प्रशासन और प्रबन्धन के अलावा और भी बहुत कुछ समाहित रहता है। शिक्षण संस्थाओं में नेताओं से पढ़ाने–सीखने के तरीकों को सुदृढ़ बनाने की चुनौतियों को स्वीकार करने और शिक्षकों के विकास को निरन्तर सहयोग प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है। उनसे पेशेवर क्षमता बढ़ाने वाले ऐसे तरीकों को सीखने की अपेक्षा की जाती है जो पाठ्यक्रम विकास, दल–नेतृत्व, जवाबदेही और पर्यवेक्षण में सहायक होते हैं। जिस अपेक्षा की सबसे अधिक चर्चा होती है वह परिवर्तन को सुगम बनाना और उससे पैदा होने वाले बदलावों को कारगर तरीके से सम्भालना है। नेतृत्व प्रशिक्षण, संस्थानिक विकास और परिवर्तन को सुगम बनाने के सिलसिले में आमतौर पर 'रूपान्तरकारी नेतृत्व', 'साझा नेतृत्व', 'शैक्षणिक नेतृत्व' और 'विकेन्द्रित नेतृत्व' जैसी धारणाओं की चर्चा की जाती है (अर्ली एवं विंडलिंग 2004, फुलन 1995, हैरिस 2002)।

सीखने में सहायक शिक्षकों की भूमिका को सहयोग देने के पेशेवर तरीकों को सीखने में स्कूल–प्रमुखों और प्रशासकों को सक्षम बनाने में हमारी अड़चन क्या है? जाहिर तौर पर जहाँ इसका उत्तर सीखने की इच्छा और इसके संगठित अवसरों की सुविधा न होना है, वहीं गौर से छानबीन करने पर पता चलता है कि परिवर्तन में आने वाली रुकावटों की जड़ें हमारी सांस्कृतिक और संस्थानिक कार्यप्रणालियों में हैं। कार्यरत और सम्भावी शैक्षणिक नेताओं को गहनता और संवेदनशीलता के साथ अपनी भूमिकाएँ निभाने में जो प्रमुख बाधाएँ आती हैं उनके कारण हैं:

अ) निरीक्षक–राज की संस्कृति

ब) संस्थानिक दूरदृष्टि और सहयोग का अभाव

स) परीक्षा के लिए पढ़ाने का चलन

> *स्कूल के परिणामों को बेहतर बनाने में नेतृत्व प्रदान करने वालों का प्रभाव ज्यादातर परोक्ष रूप से होता है तथा स्कूल के वातावरण और युवा विद्यार्थियों के जीवन को बदलने में इसे दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। अध्ययनों से यह भी स्थापित हुआ है कि 'नेता दूसरों के माध्यम से परिणाम हासिल करते हैं' और यही नेतृत्व का सारसूत्र है। (अर्ली एवं वींडलिंग 2004, लीथवुड 2004)।*

निरीक्षक राज की संस्कृति

शिक्षा का प्रशासनिक ढाँचा एक ऊर्ध्वमुखी जटिल पदानुक्रम में काम करता है। अधिकांश राज्यों के शिक्षा निदेशालय के अन्तर्गत आने वाले पदानुक्रम में जिला शिक्षा अधिकारी, सहायक जिला शिक्षा अधिकारी, ब्लॉक शिक्षा अधिकारी या कनिष्ठ सहायक निरीक्षक आते हैं। डीपीईपी तथा एसएसए के अन्तर्गत नियंत्रण का विकेन्द्रीकरण करने के लिए ब्लॉक स्तरीय स्रोत व्यक्तियों और क्लस्टर (संकुल)–स्तरीय स्रोत व्यक्तियों के लिए समानान्तर पद निर्मित किए गए। कुछ राज्यों और जिलों में भूमिकाओं और जिम्मेदारियों की दृष्टि से ब्लॉक शिक्षा अधिकारी और ब्लॉक स्तरीय स्रोत व्यक्तियों के पदों को आपस में मिला दिया गया और इसके चलते पुरानी और नई भूमिकाओं में भ्रम की स्थिति बनी रही।

प्राथमिक स्कूल ज्यादातर कनिष्ठ अधिकारियों की देखरेख में होते हैं जिन्हें 'सभी विषयों का जानकार' माना जाता है। जबकि माध्यमिक स्कूलों की देखरेख वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा की जाती है जिन्हें 'विशेष विषयों का विशेषज्ञ' कहा जाता है। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के लिए जिम्मेदार अधिकारियों के बीच समन्वयन के अभाव के कारण किसी समुदाय में स्थित स्कूलों की सेवाएँ सुधारने के लिए कोई संगठित प्रयास नहीं होते। प्राथमिक शिक्षा सबसे उपेक्षित रहती है क्योंकि बहुत कम प्राथमिक स्कूलों में प्रमुख के निर्धारित पद का प्रावधान होता है और 'निरीक्षक या ब्लॉक शिक्षा अधिकारी या ब्लॉक स्तरीय स्रोत व्यक्ति' से प्रारम्भिक वर्षों में दी जाने वाली शिक्षा की देखरेख करने के बारे में जानकार होने की अपेक्षा आवश्यक नहीं समझी जाती। दयनीय बुनियादी ढाँचे और बजट सहायता, तथा देखरेख किए जाने वाले स्कूलों की बड़ी संख्या के चलते, ब्लॉक शिक्षा अधिकारी शायद शिक्षातंत्र में सबसे अधिक काम का बोझ ढोने वाला व्यक्ति होता है। इसके अलावा स्कूल और निरीक्षण अधिकारी के सम्बन्ध का निर्धारण अभी भी अतीत की परिपाटियों से होता है जो मुख्य रूप से उपस्थिति जाँचने और बोर्ड परीक्षाओं को अतिगोपनीयता से संचालित करने तक सीमित रहती हैं। आज भी जब स्कूलों से की जाने वाली अपेक्षाएँ और आशाएँ कई गुनी और कहीं अधिक जटिल हो गई हैं, निरीक्षण अधिकारी को एक सहयोगी देखरेख करने वाले की भूमिका में नहीं बदला गया है। परिणामस्वरूप स्कूलों की देखरेख या तो न के बराबर है या बिखरी हुई है।

एक कार्यपद्धति की तरह शैक्षणिक नेतृत्व भूमिकाओं के सुसंगतिकरण, शिक्षकों की सुलभता की विवेकपूर्ण व्यवस्थाओं, पर्याप्त वित्तीय प्रावधानों, प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण के लिए प्रशिक्षण और विचारों को अमल में लाने के लिए आवश्यक विशिष्ट कौशलों के विकास के माध्यम से शिक्षकों और नीति–निर्माताओं की देखरेख और सहयोग के नए ढाँचे रचने में मदद कर सकता है।

संस्थानिक दूरदृष्टि का अभाव

कमजोर या शून्य देखरेख तथा ब्लॉक, संकुल (क्लस्टर) और स्कूल के स्तर पर संस्थानिक दूरदृष्टि के अभाव के चलते शिक्षा हमारे देश के सबसे अधिक उपेक्षित क्षेत्रों में से एक है। राज्य या केन्द्र सरकार के द्वारा संचालित कार्यक्रमों (ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, एमएलएल, डीपीईपी और एसएसए) द्वारा दिए गए लक्ष्यों के अलावा स्कूल शायद ही कभी अपने किसी सपने की कल्पना करते हैं या उसको व्यक्त करते हैं। किसी समाज या समुदाय के विकास के नैतिक उद्देश्य को हासिल करने के किसी सपने या लक्ष्य के बिना काम करना शून्य में काम करने जैसा है। उदाहरण के लिए, अधिकांश स्कूली कार्यक्रमों और आयोजनों में कल्पनाशीलता और रचनात्मकता के अभाव पर विचार करें। स्कूली जलसे लगभग हमेशा पुराने उत्सवों की नकल होते हैं और एक ऐसे बँधे–बँधाए मानक की अनुकृति होते हैं जो ब्लॉक या जिला–स्तरीय अधिकारियों द्वारा स्वीकार्य होता है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि अधिकांश स्कूल प्रमुख और ब्लॉक शिक्षा अधिकारी अपनी भूमिकाओं

को सुरक्षित सरकारी नौकरियों की तरह निभाते हैं जहाँ नाममात्र का प्रयास ही काम का पूरा होना मान लिया जाता है। ऐसे में प्रतिभाशाली और समर्पित लोगों पर भी हताशा और कटुता हावी हो जाती है। व्यक्तिगत प्रशासनिक उद्देश्यों (तबादले, अवकाश प्रदान करना, तरक्की) के लिए तो सहयोग और मार्गदर्शन मिलता है परन्तु शैक्षणिक और सांस्कृतिक लक्ष्यों के लिए नहीं। कल्पनाशीलता और पहल, जो शिक्षा और सीखने के प्रामाणिक लक्षण हैं, को दरकिनार कर दिया जाता है।

दृष्टि का विकास तथा इस बारे में स्पष्टता कि जब हम पढ़ाते हैं तो क्या पढ़ाते हैं और क्यों पढ़ाते हैं, हमारे देश की सांस्कृतिक और स्कूलों की विविधता के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं (कुमार 1992)। भारत में स्कूली शिक्षा पर अध्यापन की व्यवहारवादी पद्धति का सबसे प्रबल प्रभाव पड़ा है। वहीं दूसरी ओर, एनसीएफ 2005 तथा कई गैर सरकारी संगठनों और कुछ विश्वविद्यालयीन विभागों द्वारा किए गए काम के महत्वपूर्ण प्रभाव सामने आए हैं। पर साथ ही साथ अनेक शिक्षकों के मन में अभी भी संघर्ष की स्थिति बनी रहती है जब वे एक ओर पारम्परिक और दूसरी ओर सदा बदलते हुए मूल्यों और सम्बन्धों के बीच सर्वत्र विद्यमान तनावों का सामना करते हैं। सरकारी और निजी स्कूलों के औसत शिक्षक की ऐसी तैयारी कतई नहीं होती कि वह सामाजिक तनावों, नीतिगत अपेक्षाओं और उन दबावों से निपट सके जो उसे जबरन बढ़ाए गए अंकों और प्रतिशतों वाले राजनीतिक रूप से स्वीकार्य परिणाम देने के लिए बाध्य करते हैं (बॉटरी 2006)।

शिक्षा में परिवर्तन का सूत्र एक दूरदर्शी दृष्टिकोण गढ़ना और फिर उस दृष्टिकोण को साकार करने के लिए क्षमताएँ विकसित करना है। काई–मिंग चैंग हमें याद दिलाते हैं कि, ''दृष्टिकोण निर्माण की प्रक्रिया सिर्फ व्यक्तिगत रूप से स्कूलों के नेताओं पर काम करने का मामला नहीं है, बल्कि इसके लिए ऐसी व्यापक संस्कृति के खिलाफ काम करना भी जरूरी है जो अलग–अलग स्कूलों के भीतर दृष्टिकोण विकसित करने के पक्ष में नहीं होती'' (1995)। दृष्टिकोणों का विकास अनुभव, चिन्तन और भागीदारी की सहायता से समय के साथ धीरे–धीरे होता है। इसके प्रभावपूर्ण होने के लिए ''स्कूलों के सभी नेताओं और काम करने वालों के लिए विश्वसनीय दृष्टिकोण निर्मित करने में समर्थ होने के पहले पर्याप्त विचारपूर्ण अनुभव होना आवश्यक है'' (फुलन 1995)।

शैक्षणिक नेतृत्व लोगों को उनके अपने विभागों के लिए दृष्टिकोण, उनकी भूमिका और कार्य करने के तरीके विकसित करने के प्रशिक्षित करने के अवसर प्रदान करता है। बच्चे शिक्षाक्षेत्र के अस्तित्व का मूल प्रयोजन हैं और स्कूल नेतृत्व इस बात को पुनर्स्थापित करने में सहायक होता है। शैक्षणिक नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय पद्धतियाँ अधिकाधिक नेताओं के समूहों को पहचानने, प्रेरित करने और विकसित करने का प्रशिक्षण दे रही हैं ताकि वे अपनी संस्थाओं को शैक्षणिक और दूरदर्शी नेतृत्व प्रदान कर सकें। क्या अब समय नहीं आ गया है कि हम इसके देशज सन्दर्भ और समझ विकसित करें कि शैक्षणिक नेता कैसे प्रासंगिक शैक्षणिक परिवर्तन को प्रभावित कर सकते हैं?

परीक्षा के लिए पढ़ाने का चलन

भारत के अधिकांश सरकारी और निजी स्कूलों में परीक्षा के लिए पढ़ाने का चलन और संस्कृति रही है। पढ़ाई के व्यवहारवादी प्रतिमान को पितृसत्ता और जाति द्वारा निर्धारित होने वाले नीच–ऊँच के मजबूत भारतीय पदानुक्रमों में अपना पूरक स्थान प्राप्त हो गया है। इसका परिणाम है स्तरों में अतिशय बँटा हुआ शैक्षणिक पदानुक्रम। जब तक शिक्षकों से परीक्षा व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने की अपेक्षा की जाती रहेगी तब तक शिक्षकों और उनके काम की देखरेख करने वाले प्रमुख के सम्बन्ध की प्रकृति निरीक्षकीय बनी रहेगी। निरीक्षक या ब्लॉक शिक्षा अधिकारी के द्वारा जो कुछ प्रमुख से अपेक्षा की जाती है, वही माँग शिक्षक से की जाती है।

> *कोई आश्चर्य नहीं कि अधिकांश स्कूल प्रमुख और ब्लॉक शिक्षा अधिकारी अपनी भूमिकाओं को सुरक्षित सरकारी नौकरियों की तरह निभाते हैं जहाँ नाममात्र का प्रयास ही काम का पूरा होना मान लिया जाता है। ऐसे में प्रतिभाशाली और समर्पित लोगों पर भी हताशा और कटुता हावी हो जाती है। सीखने में सहायक होने की शिक्षकों की भूमिका को सहयोग देने के पेशेवर तरीकों को सीखने में स्कूल–प्रमुखों और प्रशासकों को सक्षम बनाने में हमारी अड़चन क्या है?*

परीक्षा–संचालित शिक्षण की जंजीरें तोड़ने के लिए परिवर्तन की कल्पना करने की क्षमता होना जरूरी है। परिवर्तन की कल्पना करने में सक्षम होने के लिए परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक, संरचनात्मक और क्रियात्मक अवसर पैदा किए जाना जरूरी है। ऐसे अवसर पैदा करने की क्षमता संवाद, कौशलों के विकास और संरचनात्मक बदलावों से निकलती है। शैक्षणिक नेताओं को सार्थक संवाद की पहल करने और उसे सुगम बनाने में सक्षम बनाए जाने की जरूरत है। उन्हें प्रासंगिक पाठ्यक्रम प्रचलनों की व्याख्या करने और उनको लागू करने में बदलाव ला सकने के लिए अधिकार दिए जाने की

जरूरत है। और ऐसे परिवर्तनों, जो बच्चों और उनके शिक्षकों के लिए हितकर हों, को सुगम बनाने की उनकी सामर्थ्य पर भरोसा किए जाने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, जब स्कूल–प्रमुख अपने स्कूल में पढ़ने के वातावरण को प्रोत्साहित करना चाहें तो उन्हें ऐसी किताबें उपलब्ध करवाने में समर्थ होना चाहिए जो बच्चों और शिक्षकों, दोनों को प्रेरित कर सकें। वर्ष में कभी–कभी सहयोगियों के साथ कस्बों और शहरों में स्थित पुस्तकालयों और किताबों की दुकानों पर जाना, इसके लिए अत्यन्त आवश्यक प्राथमिक कदम होगा। इसी प्रकार, स्कूल में नियमित व्यायाम और खेलकूद का महत्व समझने के लिए बाहर होने वाले ऐसे कार्यक्रमों में भाग लेते रहना चाहिए जो उन्हें खुद की शारीरिक और मानसिक शक्तियों को पुष्ट करने में सहायक हों। जैसे–जैसे स्कूल के विभिन्न वर्षों में पाठ्यक्रम की संरचनाएँ विकसित होती हैं, वैसे–वैसे विद्यार्थियों की प्रगति आँकने की प्रक्रियाएँ और संकेतक भी विकसित होते हैं। बहु–स्तरीय सीखने पर काम करने का तात्पर्य अपरिहार्य रूप से पाठ्यक्रम को पढ़ाने के अनेक तरीके विकसित करना होता है। जो पद्धति कुछ बच्चों के लिए काम करती है वह अन्य के लिए काम नहीं करती। हो सकता है कि विशेष शिक्षा में उपयोग की जाने वाली रणनीतियाँ मुख्यधारा की कक्षाओं में सीखने में होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए नई अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान कर सकें। शैक्षणिक नेता का काम सबके लिए प्रासंगिकता और सार्थकता को सुलभ बनाने के अनेक तरीके खोजने और निर्मित करने में शिक्षकों की मदद करना होता है।

नए औजार और प्रक्रियाएँ विकसित करने के साथ ही पालकों और स्थानीय समुदाय को परिवर्तनों से अवगत कराने की जिम्मेदारी भी सामने आती है। ऐसे अनुभवों का प्रबन्धन और नेतृत्व एक महती चुनौती साबित हो सकती है। प्रशिक्षित शैक्षणिक नेता सार्थक चरणों में परिवर्तन को सुलभ बनाने के लिए अभिनव प्रयोगों और दीर्घकालिक सम्बन्धों को बढ़ावा दे सकते हैं।

निष्कर्ष

सीखने के एक व्यावहारिक विषयक्षेत्र की तरह शैक्षणिक नेतृत्व शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अवयवों (या उपव्यवस्थाओं) के बीच प्रगट तथा अप्रगट सम्बन्धों को स्थापित करने में शिक्षकों, अकादमिक विद्वानों और नीति–निर्माताओं के लिए जबरदस्त अवसर प्रदान करता है। उपव्यवस्थाओं के अन्तर्सम्बन्ध के अध्ययन द्वारा यह ऐसे ढाँचे प्रदान करता है जो अधिक व्यापक होते हैं और शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न भागीदारों की बहुआयामी आवश्यकताओं को स्वीकार करते हैं। शिक्षा के सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक प्रतिमानों के व्यावहारिक अवयव विकसित करना किसी शैक्षणिक नायक के लिए सबसे बड़ी चुनौती होती है। गुणवत्ता और प्रदर्शन की बदलती हुई अपेक्षाओं के चलते शैक्षणिक नायकों को एक ओर मानकीकरण की पद्धतियों के गुण–दोषों और दूसरी ओर स्थानीय रूप से प्रासंगिक 'बहु–स्तरीय प्रतिमानों' को विकसित करने की सम्भावनाओं की पड़ताल करने और उन पर बहस करने की उत्तरोत्तर अधिक आवश्यकता है (सर्जियोवन्नी 2001)। शैक्षणिक नायक शोध, पेशेवर विचार–विनिमय और नीति विश्लेषण के द्वारा बदलती हुई पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन पद्धतियों और सामाजिक सहभागिता की नीतियों के लिए अपने को तैयार कर सकते हैं।

स्कूल के चलन में पारम्परिक मनोदृष्टि को बदलना आसान नहीं होता। परिवर्तन को सतत बनाए रखना उससे भी बड़ी चुनौती होती है। कई चरणों में परिवर्तन की कल्पना करने से उसे साकार करने वालों और उसमें भाग लेने वालों को जिन दिशाओं में परिवर्तन आकार लेगा उनके लिए तैयारी करने में सहायता मिलेगी (वैब 2005)। दृढ़ विश्वास निर्मित करने के अलावा, शिक्षा के वांछनीय प्रतिरूपों को स्कूल के भीतर, और स्कूलों की सहायता के लिए बने शिक्षा व्यवस्था के सभी ढाँचों में, सर्वांगीण योगदानों के विकास की आवश्यकता होती है।

शिक्षा और समाज में परिवर्तन की यात्रा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी, शैक्षणिक नेतृत्व, अभी नदारद है। चूँकि संस्कृति और शिक्षा स्थिर नहीं होतीं, इसलिए यह जानना परिवर्तन का नेतृत्व करने के लिए आवश्यक पूर्व शर्त है कि क्या कारगर है और किस प्रकार विभिन्न अवयवों को कारगर होने में सक्षम बनाया जा सकता है।

Footnotes

1. Leithwood L., Et al. "Seven Strong Claims About School Leadership", www.ncsl.org.uk, 2009

References

1. Batra, S. (2003) 'From School inspection to School Support', in : Sood, N. (ed) Management of School Education in India, NIEPA.
2. Bottery, M (2006) 'Educational leaders in a globalizing world: a new set of priorities?' in School Leadership and Management, Vol. 26, No. 1, February, 2006.
3. Cheng, Kai-ming (1995) 'Vision building among school leaders' in Wong, K. C. and Cheng, K. M. (eds) Educational Leadership and Change: An International Perspective, Hong Kong, Hong Kong University Press.

4. Early, P. and Weindling, D.(2004) "A changing discourse: from management to leadership" in: Understanding school leadership, Paul Chapman Publications.

5. Fullan, Michael G.(1995) 'The evolution of change and the new work of the educational leader', in: Wong, K. C. and Cheng, K. M. (eds) Educational Leadership and Change: An International Perspective, Hong Kong, Hong Kong University Press.

6. Harris, Alma (2002) School Improvement: What's in it for schools?, Routledge Falmer, London.

7. Kumar, Krishna (1992) What is worth teaching?, Orient Longman, New Delhi.

8. Leithwood, K. et al (2004) 'Strategic leadership for large scale reform: the case of England's National Literacy and Numeracy Strategy' in School Leadership and Management, Vol. 24, No. 1, February 2004.

9. Leithwood K., et al. (2009) "Seven strong claims about school leadership", www.ncsl.org.uk

10. Senge, P. M. (1990). The ffth discipline: The art and practice of the learning organization. New York: Doubleday.

11. Sergiovanni, Thomas R.(2001) Leadership: What's in it for schools?, Routledge, London.

12. Webb, Rosemary (2005) 'Leading teaching and learning in the primary school' in Educational Management Administration and Leadership, Sage Publications, Vol 33 (1), 69-91, 2005

13. Wong, Kam-cheung (1995) 'Culture and leadership', in: Wong, K. C. and Cheng, K. M. (eds) Educational Leadership and Change: An International Perspective, Hong Kong, Hong Kong University Press.

सुनील बत्रा, एम.एड. हैं। वे बीस वर्षों से भी अधिक समय से शिक्षा में प्रगतिशील प्रचलनों को सुलभ बनाने के लिए बच्चों, शिक्षकों, स्कूल–प्रमुखों और पालकों के साथ घनिष्ठ रूप से काम कर रहे हैं। वे प्रगतिशील स्कूलों को नर्सरी से लेकर कक्षा 12 तक विकसित करने में विशेषज्ञ हैं तथा शैक्षणिक नेतृत्व और प्रबन्धन में उच्चतर शिक्षा कार्यक्रमों को बनाने व कार्यान्वित करने में संलग्न हैं। सुनील गुड़गाँव में स्थित एक प्रयोगधर्मी स्कूल, शिक्षान्तर, के संस्थापक शिक्षा निदेशक हैं। उन्हें शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव प्राप्त है। वे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) के कई स्कूलों से जुड़े रहे हैं तथा दिल्ली और मुम्बई के विश्वविद्यालयों, गैरसरकारी संगठनों तथा भारत सरकार की शैक्षणिक पहलों के स्रोत व्यक्ति हैं। उनसे sunilbatra07@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।